अष्टावक्र गीता – एक परीचय

आशीष सेमवाल, तृप्ति जुयाल

माया ग्रुप ऑफ कॉलेजेस, देहरादून, इंडिया

सार:

दर्षन ग्रन्थों का प्रमुख लक्ष्य मनुष्य को त्रिविध दुःखों से मुक्ति प्रदानकर अन्तिम ध्येय मोक्ष तक पहुॅचाना है। इसलिए तत्वज्ञान तो भारतीय संस्कृति और धर्म की मूल प्रतिष्ठा है। संसार के भौतिक पदार्थों से मानव को क्षणिक शारीरिक सुख तो अवष्य प्राप्त होता है परन्तु नित्य एवं शाष्वत आत्मनन्द के सामने यह नितान्त महत्वहीन है। इस आनन्द को उपलब्ध नहीं करना, अपितु वह तो प्राप्त ही है। उसे केवल पुनः स्तृति में लाना है। इसलिए केवल बोध ही पर्याप्त है। सद्गुरू दृष्टि या बोध देकर इसे अनावृत्त करता है। इसलिए गुरू की महिमा कहा गया है–

गुरूर्ब्रह्मा गुरूर्विष्णु गुरूर्देवोः महेष्वरः।
गुरूः साक्षात् पर ब्रह्माः तस्मै श्री गुरूवेनमः।।

गुरू– षिष्य संवाद के रूप में तत्वज्ञान के विषय पर जितने भी ग्रन्थों की रचना हुई है, उनमें **‘अष्टावक्र गीता’** एवं **‘श्रीमद्भगवद्गीता’** को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इसलिए विज्ञजनों द्वारा इसे **‘गीता’** ही नहीं **‘महागीता’** की संज्ञा दी जाती है। इसमें महत्वपूर्ण वेदों का सार संग्रह किया गया है। सरल–सहज शब्दों से मुक्त इसका आषय अत्यन्त गम्भीर है। अल्पायु में आठ स्थानों से विकृत शरीर वाले मुनि अष्टावक्र का जनक जैसे ज्ञानी को शास्त्रार्थ में पराजित करना, जनक का षिष्यत्व ग्रहण करके परम श्रद्वा से उपदेष सुनना, आत्मज्ञान सम्बन्धी जनक की स्वाभाविक शंकाओं का समुचित समाधान तथा विभिन्न अनुभूतियों के संग्रह से संचित यह ग्रन्थ वस्तुतः ज्ञान का प्रकाष पुंज है।

परीचय:

भारतीय दर्षन आध्यात्मिकता से ओतप्रोत है। वैदिककालीन दर्षन से भारतीय समकालीन दर्षन तक की दार्षनिक परम्परा किसी न किसी रूप में आध्यात्मवाद की ही अनुषंसा करती रही है। अब तक जितनी भी विचारधाराओं का उद्भव हुआ है वे आध्यात्मिक प्रभाव से तनिक भी अछूती नहीं रहीं है। इसमें चाहे नास्तिक बौद्ध और चार्वाक दर्षन हो चाहे जैन दर्षन हो। चार्वाक दर्षन ही एकमात्र अपवाद है जोकि भारतीय दर्षन एवं संस्कृति में अपना विषेष स्थान न बना सका। इस प्रकार कहा जा सकता है कि आध्यात्मवाद का बीज भारत की भूमि में रोपित, अंकुरित तथा पुष्पित हुआ, जिस कारण यहॉ की संस्कृति एवं धर्म में अध्यात्म की झलक

दिखाई पड़ती है। शायद ही यहॉ ऐसा कोई समय रहा हो जब यहॉ की संस्कृति में आध्यात्मिकता की सुगन्ध न रही हो। भारत की यह आध्यात्मिक परम्परा विष्व की प्राचीनतम् परम्पराओं में से एक है। यहॉ आध्यात्म से जुड़े अनेक विषयों पर परिचिर्चा, अनुसन्धान तथा आध्यात्मिक उपलब्धियॉ सदैव प्रषंसा का विषय रही है। आध्यात्म के गूढ़तम रहस्यों पर अनेकानेक विद्वानों तथा आचार्यों में शास्त्रार्थ एवं संगोष्ठियों का आयोजन इस आषय से किया जाता रहा है कि आध्यात्मिक भारत की अन्तरात्मा है और बिना आध्यात्मिकता के भारत निष्प्राण है। आज भी भारत में वेद, उपनिषद, पुराण, स्मृति, दर्षन, गीता, ब्रह्मसूत्र आदि में आध्यात्म की बहुमूल्य सम्पदा संजोकर रखी गयी है। आज भी इन ग्रन्थों में ऋषियों, मुनियों तथा दार्षनिकों के महानतम वक्तव्य ऐसे जान पड़ते है कि मानो ये आज ही की घटना है। इन घटनाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय भारतीय दर्षन की अमूल्य धरोहर है।

वेदान्तिक परिपाटी के इस अनवरत प्रवाह में ऐसे ही ग्रन्थों में अष्टावक्र–गीता और श्रीमद्भगवद्गीता है। अष्टावक्र–गीता को कौषिकेय संहिता, अष्टावक्र–संहिता अथवा कौषिकेय गीता के नाम से भी जाना जाता है।अष्टावक्र–गीता को प्रायः बहुत कम ही लोग जानते हैं क्योंकि अधिकतर लोगों को भगवान श्रीकृष्ण के मुख से निःसृत श्रीमद्भगवद्गीता को ही जानते और पहचानते हैं। अष्टावक्र–गीता एवं श्रीमद्भगवद्गीता की आध्यात्मिक विषेषता एवं विषिष्टता के कारण ही इस विषय पर शोध कार्य करने का प्रयास किया गया है।

अष्टावक्र–गीता एवं श्रीमद्भगवद्गीता अद्वैत विषयक उन अनुपम ग्रन्थों में से एक है जिसमें आध्यात्मिक प्रष्नों की बड़ी ही सरल, सारगर्भित एवं तर्कपूर्ण विवेचना की गयी है। अष्टावक्र–गीता में राजा जनक श्रोता के रूप में और अष्टावक्र वक्ता के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं। यहॉ यह भी स्पष्ट कर देना आवष्यक है कि श्रीमद्भगवद्गीतामें जो श्रीकृष्ण और अर्जुन का संवाद हमें प्राप्त होता है वह युद्ध पूर्व वातावरण के बीच घटित हुआ संवाद है। वहॉ श्रोता के रूप में अर्जुन मोहग्रस्त हो, युद्ध न करने का निष्चय करते हैं। अर्जुन के चित का मनोवैज्ञानिक विष्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि अर्जुन एक किंकर्तव्यविमूढ़ व्यक्ति है जोकि अपने कर्तव्य पथ से भटक गया है और सत्य–असत्य का निर्णय करने में असमर्थ है। इसके विपरीत अष्टावक्र–गीता का श्रोता राज जनक एक विवेकी, विचारवान एवं मुमुक्ष पात्र हैं जो मुमुक्षाभाव लिए महान तत्वज्ञानी अष्टावक्र के समक्ष उपस्थित हैं।

अष्टावक्र गीता – एक परीचय

अष्टावक्र–गीता के वक्ता अष्टावक्र मात्र बारह वर्ष का बालक है और उसमे जो प्रदीप्त प्रज्ञा है वह एक प्रबुद्ध व्यक्ति की प्रज्ञा है। ऐसी प्रज्ञा बारह वर्ष के बालक मे होनी निःसंदेह ही आष्चर्यजनक है और ऐसा प्रज्ञावान बालक राजा जनक को ज्ञानोपदेष करता है, यह साधारण बात नहीं। इससे सिद्ध होता है कि

अष्टावक्र कोई साधारण बालक नहीं हैं जो जनक की आत्म–जिज्ञासा को आत्मोपलब्धि तक पहुॅचाने में सक्षम हैं। यह अष्टावक्र की विषिष्टता के साथ–साथ उनकी ज्ञानवृद्धता का भी द्योतक है।आधुनिक युग में अष्टावक्र–गीता का महत्व किसी न किसी रूप में बना ही रहता है। अष्टावक्र–गीता का चिन्तन व्यक्ति को इतनी तृप्ति प्रदान करता है कि वह इसके प्रभाव से अछूता नहीं रह सकता।

अष्टावक्र गीता के रचयिता, कालनिर्णय व विषयवस्तु–

आत्मज्ञान पर जितने ग्रन्थों की रचना हुई है उनमें से **‘अष्टावक्र–गीता’** को सर्वश्रेष्ठ कहा जा सकता है। यही कारण है कि विद्वतजनों द्वारा इसे केवल **‘गीता’** ही नहीं, महागीता की संज्ञा दी गयी है। अल्पायु में आठ स्थानों से विकृत शरीर वाले अष्टावक्र का जनक जैसे ज्ञानी को शास्त्रार्थ में पराजित करना और जनक का षिष्यत्व ग्रहण करके परम श्रद्धा से उपदेष सुनना एक अनहोनी और आष्चर्यजनक घटना है। उस युग के विद्वान षिरोमणि महर्षि याज्ञवल्क्य के षिष्य और व्यासपुत्र शुक्रदेव मुनि के उपदेष्टा जनक को ज्ञान का उपदेष देने वाला कोई अधिकारी तत्ववेत्ता ही हो सकता है।

अष्टावक्र–गीता के रचयिता–

‘अष्टावक्र–गीता’ के रचयिता अष्टावक्र के जीवन के बारे में तीन कथायें प्रचलित हैं जिनसे सिद्ध होता है कि वे ज्ञानियों में षिरोमणि थे। अल्पायु में ही इन्हें आत्मज्ञान हो गया था। अष्टावक्र सम्बन्धी उपाख्यान स्पष्ट रूप में महाभारत में मिलता है। जब यह गर्भ में थे, उस समय एक दिन इनके पिता ऋषि कहोड़ वेदपाठ कर रहे थे तो इन्होंने गर्भ में से ही अपने पिता को रोक दिया– ‘रूको, यह सब बकवास है, शास्त्रों में ज्ञान कहॉ? ज्ञान तो स्वयं के भीतर है। **‘सत्य’** शास्त्रों में नहीं स्वयं में है। शास्त्र शब्दों का संग्रह मात्र है। यह सुनते ही उनके पिता का अहंकार जाग उठा। वह केवल पण्डित मात्र थे, आत्मज्ञानी नहीं। अतः उन्हें अपने पांडित्य पर अहंकार था। वह अहंकार पर चोट पड़ते ही तिलमिला उठे कि उन्हीं का वह पुत्र उन्हें उपदेष दे रहा है तो अभी पैदा भी नहीं हुआ है। उसी समय उन्होंने उसे श्राप दे दिया कि जबवह पैदा होगा तो आठ अंगों से टेढ़ा–मेढ़ा होगा। और ऐसा ही हुआ। इसलिए उनका नाम **‘अष्टावक्र’** पड़ा।

इसके बाद कहोड़ राजा जनक की राज्यसभा में गये। राजा ने देष के सभी बड़े–बड़े विद्वानों को बुलाकर एक सभा का आयाजन किया था। जिसमें तत्वज्ञान पर शास्त्रार्थ रखा गया था। इसमें यह भी घोषणा की गयी थी कि जो इसमें जीतेगा, उसे सींगों पर सोना मढ़ी हुई सौ गायों को दिया जायेगा। इस शास्त्रार्थ में ऋषि कहोड़ अन्य सभी विद्वानों से तो जीत गए किन्तु एक पण्डित वंदिन से हार गये। परिणामस्वरूप वह

समुद जल में समा गये। बहुत वर्षों तक उनके परिवार के किसी सदस्य को उनके विषय में कोई समाचार ज्ञान नहीं हुआ।

जब अष्टावक्र बारह वर्ष के थे उन्होंने अपने मामा श्वेतकेतु से अपने पिता का वृतान्त जाना। अष्टावक्र उसी समय श्वेतकेतु के साथ राजा जनक की राज्यसभा में वन्दिन से शास्त्रार्थ कर उसे हराने के लिए चल दिये। वहॉ पहुॅचकर उन्होंने वन्दिन से शास्त्रार्थ करने की अनुमति ली और कहा, 'मैं यहॉ ब्रह्मद्वैत के सिद्धान्त को प्रतिपादित करने आया हूॅ।' इसके बाद हुए शास्त्रार्थ में वन्दिन पराजित हो गए और समुद्र में समा गए। तभी उनके पिता कहोड़ वहॉ पुनः उपस्थित हुए। पिता ने अपने पुत्र को सामड़्ग नदी में स्नान कराया। जिससे अष्टावक्र के सभी अंग तत्काल ही सीधे हो गये, परन्तु वह फिर भी सदैव **'अष्टावक्र'** ही कहलाये।

अष्टावक्र के सम्बन्ध में जो दूसरी कथा ज्ञात है, वह इस प्रकार है कि जब वह जनक की सभा में अपने टेढ़े–मेढ़े शरीर से चलते हुए पहुॅचे तो उनकी आकृति व चाल देखकर सभी सभासद हॅस दिए। थोड़ी देर रूकने के बाद अष्टावक्र भी उन सभासदों को देखकर जोर से हॅसे। उन्हें हॅसता देखकर राजा जनक ने उनसे पूछा, 'ये विद्वान क्यों हॅसे, यह तो मैं समझ गया किन्तु तुम क्यों हॅसे, यह मेरी समझ में नहीं आया।' इस पर अष्टावक्र ने उत्तर दिया कि वह यह जानकर हॅसे कि इन **'चर्मकारों'** की सभा में आज सत्य का निर्णय हो रहा है। **'चर्मकार'**शब्द सुनते ही सारी सभा में सन्नाटा छा गया क्योंकि जनक की सभा में आकर कोई उनके ही सभासदों को चर्मकार कह दे तो यह जनक का ही अपमान है। इससे पहले कि सभासद अपना रोष प्रकट करते जनक ने संयमित होकर अष्टावक्र से उनके ऐसा कहने का कारण जानना चाहा। अष्टावक्र ने उत्तर दिया– 'बहुत सीधी सी बात है कि चर्मकार ही चमड़ी का पारखी होता है। ज्ञानी तो केवल ज्ञान को देखता है, चमड़ी को नहीं। इन सबको मेरी चमड़ी ही दिखाई दी, मेरा टेढ़ा–मेढ़ा शरीर ही दिखाई दिया। अतः ये ज्ञानी कहलाने के योग्य नहीं हो सकते, चर्मकार ही हो सकते हैं। जैसे मन्दिर के टेढ़ा होने से आकाष टेढ़ा नहीं होता और मन्दिर के गोल अथवा लम्बा होने से आकाष गोल अथवा लम्बा नहीं होता क्योंकि आकाष का मन्दिर के साथ कोई सम्बन्ध नहीं होता। आकाष निरवयव है तथा मन्दिर सावयव है। उसी प्रकार ही आत्मा का भी शरीर के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है क्योंकि आत्मा निरवयव है और शरीर सावयव है। आत्मा नित्य है और शरीर अनित्य। शरीर के वक्र आदिक धर्म आत्मा के कदापि नहीं हो सकते। हे राजन! ज्ञानवान को आत्म–दृष्टि होती है अर्थात् वह आत्मा को ही देखता है। अज्ञानी की ही चर्म दृष्टि होती है।'

अष्टावक्र के इन वचनों को सुनकर राजा जनक अत्यधिक प्रभावित हुए। वह उनके चरणों में गिर पड़े और आष्टांग दण्डवत किया तथा उन्हें ज्ञान का उपदेष देने हेतु अपने महलों में आमन्त्रित किया। दूसरे दिन जब अष्टावक्र वहॉ पहुॅचे तो राजा ने उन्हें सिंहासन पर बैठाया, एवं उनके चरणों में बैठे व षिष्य–भाव से

अपनी जिज्ञासाओं का समाधान इस बारह वर्ष के बालक **‘अष्टावक्र’** से करवाया। यही शंका समाधान जनक–अष्टावक्र संवाद रूप में **‘अष्टावक्र–गीता’** है।

अष्टावक्र के सम्बन्ध में एक और कथा मिलती है कि राजा जनक ने आत्मज्ञान सम्बन्धी अनेक शास्त्रों का अध्ययन किया था। एक शास्त्र में लिखा था कि आत्मज्ञान बहुत सरल है। इसके लिए कुछ करना नहीं पड़ता। घोड़े पर चढ़ने के लिए उसके पगड़े में एक पॉव रखने व दूसरे पगड़े में दूसरा पॉव रखने में जितना समय लगता है, उससे भी कम समय में आत्मज्ञान सम्भव है। राजा जनक मुमूक्ष थे। वे इसकी सत्यता की परख करना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने देष के बड़े–बड़े विद्वानों एवं तत्वज्ञानियों की सभा बुलाई व उनके सामने शास्त्र के इन वचनों को पढ़ते हुए कहा कि इस कथन को सत्य प्रमाणित कीजिए अन्यथा इस पंक्ति को शास्त्र से हटा दीजिए। वे सभी विद्वान केवल पण्डित ही थे जिन्हें शास्त्रों का पुस्तकीय ज्ञानमात्र था। वे शास्त्रार्थ करने में तो प्रवीण थे किन्तु स्वयं आत्म–ज्ञानी न होने से ज्ञान प्राप्ति के इस कथन को सत्य प्रमाणित करने में असमर्थ थे। राजा ने उन सब को कारागृह में डाल देने का आदेष दे दिया।

अष्टावक्र ने यह समाचार सुना तो वे स्वयं राजा जनक के पास गए एवं उन्होंने उनकी इस चुनौती को स्वीकार करते हुए कहा कि वह इस सत्य को प्रमाणित करेंगे। लेकिन इससे पहले उन्होंने सभी विद्वानों को बन्धनमुक्त करने के लिए और तत्पष्चात् राजा को घोड़ा तैयार करवाकर अपने साथ चलने को कहा। राना ने ऐसा ही किया। अष्टावक्र राजा जनक को लेकर शहर से दूर एकान्त में गए, जहॉ घोड़ा रोककर जनक से अपना एक पॉव घोड़े के पगड़े में रखने को कहा। जब राजा ने ऐसा ही किया तब अष्टावक्र ने उनसे पूछा, ‘बताओ, शास्त्रों में आपने क्या पढ़ा है? राजा ने वही बात पुनः दोहराई तो अष्टावक्र ने कहा और पूछा कि यह तो सत्य है लेकिन इसके आगे आपने क्या पढ़ा? ‘इसके लिए पात्रता होनी चाहिए।’ जनक ने उत्तर दिया। इस पर अष्टावक्र ने पूछा, ‘क्या यह शर्त आपने पूरी कर ली है? जब इसकी शर्त पूरी नहीं की है तो आत्म–ज्ञान कैसे सम्भव है? राजा जनक एक बार तो चौं गए किन्तु वे मुमुक्ष थे, उन्हें आत्मज्ञान की उत्कृट इच्छा थी। वह केवल मानना ही नहीं, जानना भी चाहते थे। वैज्ञानिक की भॉति ईष्वर–ज्ञान को प्रत्यक्ष देखना चाहते थे। उनमें तीव्र बुद्धि व प्रतिभा व उच्च बोध था, रहस्य को समझने की क्षमता थी और इससे भी उच्च कोटि की थी उनकी मुमुक्षा। शास्त्रों के ज्ञाता होने के कारण वे जानते थे कि पात्रता के लिए आवष्यक हैं– अहंकार से मुक्ति, पूर्ण समर्पण, शरीर व मन के भावों से मुक्ति, शास्त्र व ज्ञान से मुक्ति, सभी प्रकार के बाह्य उपादानों से स्वयं को मुक्त कर देना ही पात्रता है। इस सबका कारण अहंकार है, जिसके छूटते ही व्यक्ति का आत्मा से उसी क्षण सम्पर्क हो जाता है। यदि **‘अहं’** दृष्टि बदल गई तो सब कुछ बदल जाता है। यह दृष्टि–परिवर्तन बोध से ही सम्भव है।

राजा जनक ने उसी समय अष्टावक्र के सामने समपर्ण कर दिया व कहा, ‘यह शरीर, मन, बुद्धि, अहंकार सब कुछ मैं आपके समक्ष समर्पित करता हूॅ। आप इसका जैसा चाहें, उपयोग करें।’ अहंकार शून्य

जनक का स्थल से सम्बन्ध विच्छेद हो गया, वे सूक्ष्म में प्रवेष कर गए। अष्टावक्र ने पात्रता देखकर अपना सम्पूर्ण ज्ञान पात्र में उड़ेल दिया। जो संसार से शून्य हो गया, वही भर जाता है। गडढ़े भर जाते हैं व षिखर सूखे रह जाते हैं। यही आध्यात्मिक उपलब्धि का रहस्य है। इस रिक्तता की स्थिति में अष्टावक्र ने जनक के अन्तःकरण को छू लिया व जनक को घोड़े पगड़े में पॉव रखने के पूर्व ही आत्मबोध हो गया। घटना एक क्षण में घट गयी, वे उसी समय ध्यानस्थ होकर समाधि में पहुॅच गए। घोड़े के दूसरे पगड़े पर पैर रखने की भी सुध न रही। अष्टावक्र पास ही बैठ गए। इस प्रकार तीन दिन व्यतीत हो गए। राज्य में कोहराम मच गया। राज्य में अव्यवस्था होती देख कुछ मन्त्रीगण राजा को ढूॅढ़ने निकले तो देखा कि जंगल में राजा, घोड़े के एक पगड़े पर पॉव रखे खड़े हैं। अष्टावक्र समीप ही बैठे हैं। एक मन्त्री ने राजा से कहा, 'महाराज! तीन दिन हो गए। राज्य कार्य में अव्यवस्था हो रही है। अब आप पुनः राजधानी चलिए। इस पर जनक ने उत्तर दिया, 'अब कौन चले, न शरीर मेरा है, न मन। वह सब तो मैं गुरू को समर्पित कर चुका हूॅ।' अष्टावक्र ने उन्हें तत्काल ही निष्काम कर्म का महत्व बताते हुए उन्हें पुनः राजधानी जाकर राज्य–कार्य चलाने का आदेष दिया।

इस संसार–प्रपंच में जो कुछ हो रहा है वह इसी आत्म–अज्ञान का ही फल है। किन्तु कुछ बौद्धिक पुरूष उस विस्मृत आत्मा का पुनः स्मरण करवा व्यक्ति को इन बन्धनों से मुक्त कराकर स्वयं सिद्ध मोक्ष की ओर ले जाते हैं। समय–समय पर ऐसे अनेकों शुद्ध पुरूष अवतरित हुए हैं जिनके मार्ग दर्षन से अनेकों भटकती हुई जीवात्माओं का उद्धार हुआ है। अष्टावक्र भी ऐसे ही बुद्ध पुरूष थे, जिनका नाम आध्यात्मिक जगत् में बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है।

निष्कर्ष:

अष्टावक्र–गीता की रचना किसी योजना या किसी इच्छा से नहीं हुई बल्कि यह संवाद अष्टावक्र की अन्तरात्मा के सहज उद्‌गार स्वरूप जनक जैसे मुमुक्षुओं के कल्यार्थ अस्तित्व में आया। अष्टावक्र–गीता जैसा यह अद्‌भुत संवाद कभी–कभी ही घटित होता है। इसका कारण है कि न तो सदैव अष्टावक्र जैसे महान तत्वज्ञानी ही उपलब्ध होते हैं और न सदैव जनक जैसा श्रेष्ठतम मुमुक्षु पात्र ही मिल पाता है और यदि ये उपलब्ध हो भी जायं तो इनका एक साथ मिलना अवष्य ही एक दुर्लभ एवं महत्वपूर्ण घटना होती है। ऐसी दो महान विभूतियों का मिलन अवष्य ही सहस्र वर्षों के पष्चात् होता है, जिसके परिणामस्वरूप अष्टावक्र गीता जैसा महानतम् आध्यात्मिक ग्रन्थ सम्पूर्ण मानव जाति को कल्याण पथ प्रदान करता है। इस ग्रन्थ का जितना गुणगान किया जायं उतना ही कम है, क्योंकि यह ग्रन्थ आत्मजिज्ञासु के चित्त में उठी सभी शंकाओं का युक्ति–युक्त समाधान प्रस्तुत कर उसे शान्ति प्रदान करता है।

सन्दर्भ सूची

1. अष्टावक्र गीता टीकाकार–राय बहादुर बाबू जालिम सिंह, प्रकाषक–तेजकुमारबुकडिपो (प्रा0) लि0 लखनऊ, बारहवॉ संस्करण–सन् 2000 ई0
2. अष्टावक्र गीता व्याख्याकार–नन्द लाल दषोरा, प्रकाषक–रणवीर प्रकाषन, हरिद्वार। बारहवॉसंस्करण–सन् 2002 ई0
3. अष्टावक्र गीता अनुवादक–स्वामी हरिहरदास त्यागी, प्रकाषक–रणवीर प्रकाषन, हरिद्वार। प्रथमसंस्करण–सन् 2001 ई0
4. अष्टावक्रमहा गीता व्याख्याकार–काका हरिओउम्, प्रकाषक–मनोज प्रकाषन, दिल्ली। संस्करण–सन् 2004 ई0
5. अष्टावक्रमहा गीता व्याख्याकार–ओषो, प्रकाषक–ताओ प्रकाषन प्रा0 लि0 पुणे।
6. अष्टावक्रमहा गीता व्याख्याकार–आचार्य मानिक, प्रकाषक–साधना प्रकाषन, दिल्ली। संस्करण–सन् 2004 ई0

स्मृतिसाहित्य–

1. श्रीमद्भगवद् गीता प्रकाषक–गीता प्रेस, गोरखपुर।
2. श्रीमद्भगवद् गीता टीकाकार–जयदयाल गोयन्दका।
3. तत्वविवेचनी हिन्दी– टीकाप्रकाषक–गीता प्रेस, गोरखपुर, उन्नीसवॉं संस्करण– सं0 2049।
4. षिवगीता टीकाकार– पं0 ज्वाला प्रसाद मिश्र, प्रकाषक– खेमराज श्रीकृष्ण दास, बम्बई संस्करण–सन् 2002 ई0 पप

अद्वैत दर्षन साहित्य–

1. अप्पय दीक्षित सिद्धान्तलेष संग्रह अनुवादक–वेदान्ताचार्य पं0 श्रीमूलषंकरव्यास, प्रकाषक–भारतीय बुककारपोरेषन, दिल्ली संस्करण–सन् 2005 ई0

2. चित्सुखाचार्य तत्वप्रदीपिका (चित्सुखी) प्रकाषक–उदासीन संस्कृत विद्यालय, वाराणसी तृतीय संस्करण–सन् 1985 ई0

3. दत्तात्रेय अवधूत गीता अनुवादक और व्याख्याकार–नन्दलालदषोरा, प्रकाषक–रणवीर प्रकाषन, हरिद्वार। बारहवॉं संस्करण–सन् 2002 ई0

4. दत्तात्रेय जीवनमुक्त गीता टीकाकार–ब्रजरत्न भट्टाचार्य, प्रकाषक–खेमराज श्रीकृष्णदास, मुम्बई। संस्करण–सन् 1999 ई0

5. नृसिहाश्रम वेदान्त तत्व विवेक अनुवादक–स्वयं प्रकाषगिरि, प्रकाषक – श्री दक्षिणा मूर्ति मठ प्रकाषन, वाराणसी प्रथम संस्करण–सन् 1997 ई0

6. पद्मपादाचार्य पंच पादिका टीकाकार एवं सम्पादक – डा0 किषोर दास स्वाामी, प्रकाषक – स्वामी रामतीर्थ मिषन, देहरादून। संस्करण–सन् 2001 ई0

7. विद्यारण्य स्वामी जीवन मुक्ति विवेक टीकाकार–ठाकुर उदयनारायण सिंह, प्रकाषक–चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी द्वितीय संस्करण– सनं0 2041

सामान्य ग्रन्थ–

1. आधुनिक भारतीय चिन्तन विष्वनाथ, नरवणे अनु0 नेमि चन्द्र जैन, राजकमल प्रकाषन, दिल्ली–1966।
2. गीता दपर्ण स्वामी रामसुख दास गीता प्रेस, गोरखपुर, 1991।
3. गीतातत्वांक स्वामी रामसुख दास गीता प्रेस, गोरखपुर, 1948।
4. गीता उपदेष जगदीष चन्द्र विद्यार्थी आर्य कुमार सभा, दिल्ली, 1995।
5. गीता का कर्म योग विष्वबन्धु वी0वी0आर0आई0 होषियारपुर, 1970।
6. गीता का योग रामसुख दास गीता प्रेस, गोरखपुर, 1985।
7. गीता का प्रेरक तत्व काका साहबे कालेत्रकर भारतीय विद्याभवन, बम्बई, 1967।
8. गीता धर्म गीता धर्मकार्यालय, काषी, 1938।
9. गीता का व्यवहार राम गोपाल मेहता किताब महल, इलाहाबाद।
10. चौबीस गीता पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य संस्कृत संस्थान, ख्वाजा, कुतुबरोड़, बरेली, 1971।
11. भारतीय दर्षन डा0 राधा कृष्णन नन्दकिषोर राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1966।
12. भारतीय दार्षनिक समस्यायें नन्दकिषोर शर्मा राजस्थान साहित्य संस्थान, जयपुर।
13. वेदान्त दर्षनवादरायण व्याख्या गोविन्दानन्द, वेंकटेष्वर मुद्रणालय, बम्बई, 1994।
14. वेदान्त दर्ष्न डायसनपाल हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ, 1971।
15. श्रीमद्भगवद् गीता घनष्याम दास जालन गोविन्द भवन कार्यालय, गीताप्रेस, इलाहाबाद।
16. श्रीमद्गणेष गीता नीलकन्ठ आनन्द आश्रम, पूना।
17. श्रीमद्भगवद् दर्षन वाई0बी0कल्हकर पूना विद्यापीठ, पूना।
18. योग दर्षन डा0 सम्पूर्णानन्द हिन्दी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ।